International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2025; 2(5): 86-89
© 2025 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 09-10-2025
Accepted: 21-10-2025
Publish : 22-10-2025

डॉ० रेणु सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग),
वाई॰बी॰एन॰ विश्वविद्यालय,
रांची (झारखण्ड)

Correspondence:
डॉ० रेणु सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग),
वाई॰बी॰एन॰ विश्वविद्यालय,
रांची (झारखण्ड)

भारतीय षड्दर्शन में चेतन एवं अचेतन (प्रकृति) का अध्ययन

डॉ० रेणु सिंह

भारतीय दर्शन विश्व की प्राचीनतम दार्शनिक परंपराओं में से एक है। इसका मुख्य उद्देश्य केवल तर्क-वितर्क नहीं, बल्कि मनुष्य को सही जीवन जीने की राह दिखाना और आत्मा को परमात्मा से मिलाने की साधना करना है। ‘दर्शन’ शब्द का अर्थ है- सत्य को देखना या जानना। भारतीय दर्शन केवल तर्क और विचार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन जीने की कला और आत्मा की मुक्ति का मार्ग भी बताता है। भारतीय छह दर्शनों (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत) में चेतन और अचेतन तत्व का वर्णन किया गया है।

वेद में जगत् के मूल में तीन तत्व माने गये हैं- ईश्वर, जीव एवं प्रकृति। ऋग्वेद में इन्हीं तीन मूल तत्त्वों की ओर इंगित किया गया है। इसमें कहा गया है कि आत्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी अपने समान भाव से एक ही वृक्ष (प्रकृति) पर बैठे हुए हैं। उनमें से एक जीवात्मा इस प्रकृति रूपी वृक्ष के फलों को खाता है (भोगता है) तथा परमात्मा साक्षी रूप से देखता है। इसी प्रकार “यस्मिन वृक्षे मध्वदः सुपर्णा” से भी यही ध्वनि निकलती है कि प्रकृति रूपी वृक्ष पर बैठे जीव अपने पाप-पुण्य रूपी कर्मों के फलों का भोग करते हैं। ऋग्वेद के मंत्रों में इन तीन तत्त्वों की प्रक्रिया को और भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि यह तीन प्रकाशमय पदार्थ-ईश्वर, जीव तथा प्रकृति नियमानुसार विविध कार्य कर रहे हैं।

भारतीय षड्दर्शन में वेद को प्रमाण मान कर तत्त्व समीक्षा की गई है। न्याय दर्शन में कहा गया है कि मन्त्र और आयुर्वेद के प्रामाण्य की भाँति वेद का भी प्रामाण्य है क्योंकि वह परम पुरुष, पूर्ण आप्त परमात्मा द्वारा उपदिष्ट है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि ईश्वर का वचन होने से वेद चतुष्टय का प्रमाण है। सांख्य दर्शन में भी यही माना गया है कि परमात्मा की स्वाभाविक शक्ति से प्रकट होने के कारण वेदों का स्वतः प्रामाण्य है।

इसी प्रकार मीमांसा दर्शन में कहा गया है कि वेद का प्रत्येक पद के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है, अतः वह धर्म के यथार्थ ज्ञान का साधन है, क्योंकि वह परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट ज्ञान है। जो अर्थ प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से उपलब्ध नहीं होता उसका उपदेश भी वेद द्वारा परमात्मा ने दिया है। अतः वेद स्वतः प्रमाण है। वेदान्त दर्शन में भी वेद को अनेक विद्याओं से युक्त सब अर्थों का प्रकाश करने वाला शास्त्र बताया है और ऐसे सर्वज्ञ शास्त्र का कारण स्वयं ब्रह्म को बताया गया है।

योगदर्शन में भी ईश्वर को पूर्व उत्पन्न हुए ब्रह्मादि को भी गुरु (उपदेष्टा और पूज्य) बताया गया है क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न नहीं है। अतः भारतीय षड्दर्शन का मूल आधार वेद उपदिष्ट ज्ञान होने के कारण इन सभी दर्शनों में चराचर जगत् के उक्त तीन मूल तत्त्वों (ईश्वर, जीव एवं प्रकृति) को मान्यता दी गई है। इस समस्त जगत् व्यापार का आधार इन्हीं तीन तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्धों का ताना बाना है जिसे इन दर्शनों में अपनी विशेष मान्यताओं के अनुसार प्रतिपादित किया है।

न्याय दर्शन में चेतन और अचेतन का सम्बन्ध-

न्याय शास्त्र में बाह्य जगत् (प्रकृति), आत्मा और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है। प्रकृति को न्याय परमाणु रूप में मानता है।न्याय दर्शन में कहा गया है कि परमाणु सूक्ष्म एवं विनाश रहित होता है।

किसी पदार्थ का विभाग करते समय जब उसका विभाजन संभव न हो सके उसे परमाणु कहते हैं। परमाणुओं का परस्पर संयोग होने से अवयव की सत्ता सिद्ध है। इसी कारण न्याय के अनुसार परमाणुओं के विद्यमान रहने से सम्पूर्ण पदार्थों का कभी अभाव नहीं होगा। प्रलय काल में भी वह अपने सूक्ष्मरूप में विद्यमान रहते हैं। न्याय के अनुसार इस परमाणु रूप प्रकृति से सृष्टि रचना का कार्य ईश्वरेच्छा से एवं जीवों के अदृष्ट (पूर्व कर्मों का फल भोग) से प्रेरित चार भूतों के संयोग से होता है। फल प्राप्ति में मनुष्य पराधीन है क्योंकि पुरुष जिस प्रयोजन से उद्योग करता है, वह प्रयोजन सफल नहीं होता अथवा मनुष्य को कर्मों का इच्छित फल नहीं मिलता। इस से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ही इस सृष्टि का (निमित्त) कारण है। न्याय की यह स्पष्ट मान्यता है कि ईश्वर की प्रेरणा के बिना कर्म का फल नहीं मिलता क्योंकि कर्म स्वयं जड़ होने के कारण फल-निष्पत्ति में समर्थ नहीं है।

न्याय दर्शन में ईश्वर की प्रेरणा को ही सृष्टि रचना का कारण एवं मनुष्य के कर्मों का प्रेरक बताया गया है। सृष्टि रचना में ईश्वर निमित्त कारण एवं परमाणु उपादान कारण हैं। प्रलय काल में नित्य रूप परमाणुओं का अस्तित्व शेष रहता है। शरीर रचना में ईश्वरेच्छा के अतिरिक्त जीवों के अदृष्ट की प्रेरणा भी परमाणुओं में स्पन्दन का कारण होती है। इस का तात्पर्य यह है कि पूर्वजन्म में किये गये पाप-पुण्य रूप कर्म फल से शरीर की उत्पत्ति होती है।

वैशेषिक दर्शन में चेतन तत्त्व एवं अचेतन (प्रकृति) का सम्बन्ध-

वैशेषिक दर्शन में भी चेतन एवं अचेतन के सम्बन्ध की धारणा अधिकांशतः न्याय दर्शन की तत्सम्बन्धी धारणा की भांति ही है, केवल तत्त्वों के विघटन की अवस्था (प्रलय) के सम्बन्ध में किंचित अन्तर है। न्याय दर्शन में जहां अवयवों की जन्म क्रिया से अवयवों में हलचल प्रारम्भ होकर कार्य के आरम्भक संयोगों का नाश होता है जिससे अवयव एक दम ध्वस्त हो जाता है, वहीं वैशेषिक दर्शन के अनुसार मूल परमाणु के संयोग से ही विघटन क्रिया का जन्म माना जाता है। वैशेषिक का मत है कि जब कारण ही नहीं होगा तो उत्पत्ति रूप कार्य भी नहीं होगा। इस का तात्पर्य है कि विघटन की क्रिया भी संघटन की प्रक्रिया के क्रम से आगे बढ़ती है। पहले परमाणु संयोग का नाश, फिर द्व्यणुक, अनन्तर त्र्यणुक आदि के संयोग से समस्त कार्य पदार्थो का नाश होता है। यह संयोग के विपरीत क्रिया है। परमाणुओं के संयोग से महत् परिणाम होता है और उस के विपरीत वियोग से महत् अणु रूप में परिवर्तित होने लगता है। प्रलय काल में पदार्थों का विनाश होकर परमाणु रूप में स्थित हो जाना ही प्रक्रिया है।

वैशेषिक दर्शन में नौ द्रव्य माने गये हैं अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा। आत्मा के अतिरिक्त आठ द्रव्य प्रकृति के अंग हैं। इनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन एक देशीय द्रव्य है और आकाश, काल तथा दिशा व्यापक द्रव्य कहे जाते हैं। इन्हीं से मानव शरीर का निर्माण होता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार पूर्व शरीर से आत्मा, मन, इन्द्रिय आदि का बाहर निकल जाना, देहान्तर में प्रवेश कर जाना, खान पान के सम्बन्ध से होने वाले क्रियाकलाप और इन्द्रिय, प्राण आदि के सम्बन्ध से होने वाले कर्म ये सब अदृष्ट (प्रारब्ध) के भोगानुसार होते हैं। तात्पर्य यह है कि शरीर निर्माण एवं शरीर विनाश यह सब मनुष्य के कर्मों के फल भोग के अनुसार होते हैं। अतः चेतन आत्मा का अचेतन प्रकृति के साथ संयोग (शरीर प्राप्ति में) उसके द्वारा किये गये कर्मों के परिणाम स्वरूप होता है।

सांख्य दर्शन में चेतन एवं अचेतन का सम्बन्ध-

सांख्य दर्शन के अनुसार इस जगत् की रचना में मूल उपादान कारण प्रकृति है, स्थूल जगत् कार्य है। दोनों (प्रकृति एवं स्थूल जगत्) में त्रिगुणत्व (सत्त्व, रज, तम) तथा अचेनत्व समान है और इसी कारण दोनों जड़ हैं। इस दर्शन का यह भी मत है कि वेद से भी प्रकृति का इस जगत् का मूल कारण (उपादान कारण) होना सिद्ध होता है। स्थूल जगत् प्रकृति का कार्य है तथा इसके देखने से भी प्रकृति जगत् रचना का मूल कारण सिद्ध होती है। इस स्थूल जगत् की रचना में प्रकृति के साथ पुरुष (परमात्मा) का सहयोग होने पर भी सृष्टि रचना का (उपादान) कारण प्रकृति ही है, क्योंकि जिस प्रकार लोहा और अग्नि का संयोग होने पर भी लोहा अग्नि नहीं हो जाता, उसी प्रकार प्रकृति के साथ पुरुष का जगत् रचना में सहयोग भी पुरूष को जगत् रचना का उपादान कारण सिद्ध नहीं करता। इसका यह तात्पर्य है कि अचेतन प्रकृति (उपादान कारण) के साथ चेतन परमात्मा के प्रेरणात्मक सहयोग से सृष्टि रचना होती है। इस रचना में परमात्मा निमित कारण है तथा राग और द्वेष, भोग और अपवर्ग का योग ही सृष्टि कहलाती है।

सांख्यदर्शन के अनुसार आत्मा का नित्य शुद्ध, मुक्त स्वभाव है। उसका बन्धन प्रकृति और पुरुष (आत्मा) के संयोग के द्वारा उत्पन्न अविवेक के कारण होता है। प्रकृति में फंसकर आत्मा अपने को बद्ध प्रतीत करने लगता है। आत्मा असंग है और "असंगोह्यं पुरुषः" इस श्रुतिवचन से भी आत्मा का निर्गुण होना सिद्ध होता है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त कारण भी जड़ होते हैं अतः इन कारणों (इन्द्रियाँ आदि) की प्रवृत्ति संभव नहीं है। ये कारण अचेतन प्रकृति के अंग होते है। किन्तु आत्मा के कर्मानुसार अर्जित होने से आत्मा के लिए इन कारणों की उसी प्रकार प्रवृत्ति होती है जिस प्रकार कि लोक में किराया देकर कोई मनुष्य अपने उपभोग के लिए वस्तु प्राप्त करता है। सांख्य दर्शन के अनुसार मनुष्यों के शरीरों की भिन्नता का कारण जीवात्मा द्वारा किये गये भिन्न-भिन्न कर्म ही होते हैं। कर्मों की भिन्नता से कर्म भोगों की विभिन्नता होती है तथा तदनुसार ही जीवात्माओं को भोग हेतु उपकरण के रूप में मिले शरीरों में भी भिन्नता होती है। मानव देह पंचभूतों से निर्मित है और इन पंचभूतों में प्रकृति का अंग होने के कारण चेतनता का अभाव है। अतः शरीर में चेतनता आत्मा (पुरूष) के संसर्ग के कारण ही संभव होती है। प्रकृति पुरुष के संयोग के कारण ही शरीर में चेतनता होती है। सांख्य दर्शन के अनुसार

जीवात्मा के कर्मों के प्रभाव से प्रकृति अनादि काल से चेष्टारत है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त सृष्टि जीवात्मा को भोग और अपवर्ग प्रदान करने के लिए उत्पन्न हुई है और विवेक ज्ञान होने तक प्रवृत्त रहती है। जीवात्माओं के कर्मों की विचित्रता से ही प्रकृति की विविध प्रकार से सृष्टि रचना में प्रवृत्ति होती है।

योगदर्शन में चेतन एवं अचेतन का सम्बन्ध-

योगदर्शन में भी सांख्य की भांति पुरुष को द्रष्टा, बुद्धि को दर्शन तथा जगत् आदि को दृश्य माना है। वास्तव में योगदर्शन सांख्य का प्रयोगात्मक रूप है। प्रकृति से उत्पन जगत् को योगदर्शन में सत्य माना गया है और प्रकृति रूपी दृश्य पुरुषों (जीवात्माओं) के भोग एवं अपवर्ग के लिए है, ऐसी धारणा योग दर्शन में प्रतिपादित की गई है।

योगदर्शन में पुरुष एवं प्रकृति (द्रष्टा एवं दृश्य) के सम्बन्ध के विषय मे कहा गया है कि दृश्य का स्वरूप (सृष्टि रचना) पुरुष (जीवात्मा) के लिए ही है क्योंकि प्रकृति अपने किसी प्रयोजन की अपेक्षा नहीं रखती। प्रकृति द्वारा सृष्टि रचना मात्र पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिए ही होती है। योगदर्शन की यह भी मान्यता है कि पुरुष द्रष्टा है और चित दिखाने वाला उसका उपकरण मात्र है किन्तु अविद्या के कारण दोनों में भेद की प्रतीति नहीं होती। द्रष्टा (आत्मा) और दर्शन शक्ति (बुद्धि अथवा चित्त) इन दोनों में यह अभेद प्रतीति (दोनों को एक ही मानना) “अस्मिता” कही जाती है। सृष्टि को परिभाषित करते हुए योगदर्शन में बताया गया है कि प्रकाश (सत्त्व गुण) क्रिया (रजोगुण) एवं स्थिति (तमोगुण) जिसका स्वभाव है, भूत (पंचमहाभूत) और पाँच सूक्ष्म भूत तथा इन्द्रियां जिसका स्वरूप है, पुरुष (जीवात्मा) के लिए भोग और मोक्ष सम्पादन करना ही जिसका प्रयोजन है, उसे दृश्य अर्थात् सृष्टि कहते हैं। जीवात्मा के लिए इस दर्शन में कहा गया है कि यद्यपि द्रष्टा जीवात्मा ज्ञानस्वरूप, चेतन और स्वभाव से सर्वथा शुद्ध, निर्मल है किन्तु वह बुद्धि की वृत्तियों का अनुसरण करने वाला है।

योग दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति के इस संयोग का कारण अविद्या है। मिथ्याज्ञान के कारण आत्मा और चित में विवेक न रहने से दोनों में अभिन्नता प्रतीत नहीं होती है। चित्त को वृत्तियों (सुख-दुःख आदि) का पुरुष में अध्यारोप हो जाता है। परिणामस्वरूप अचेतन बुद्धि चेतन जैसी और उसी प्रकार कर्ता न होते हुए भी उदासीन पुरुष कर्ता जैसा प्रतीत होने लगता है। इस अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हो जाता है। यही पुनर्जन्मादि भावी दुःखों का अत्यन्त अभाव है और यही आत्मा का कैवल्य अथवा मोक्ष है।

योग दर्शन के अनुसार विशेष (पृथ्वी आदि पंचभूत, पाचं ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां तथा मनः) अविशेष (शब्दादि पाँच तन्मात्राएं और अहंकार) लिंगमात्र (उपर्युक्त बाइस तत्त्वों का कारण अर्थात् बुद्धि) और अलिंग अर्थात् मूल प्रकृति, ये चौबीस तत्त्व गुणों के परिणाम है।

मीमांसा दर्शन में चेतन एवं अचेतन का सम्बन्ध-

मीमांसा दर्शन के अनुसार हमारी इन्द्रियाँ ही बाह्य वस्तुओं की उपलब्धि के साधन हैं। उनके द्वारा जगत् की जिस रूप में उपलब्धि होती है, उसी रूप में जगत् की सत्यता है। जगत् के कार्य तथा चेतन पुरुष से इसके सम्बन्ध में भी मीमांसाकार की धारणा है कि आत्मा (चेतन) नित्य है और इसी कारण अनित्य पदार्थों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

आत्मा के फल भोग के साधन के रूप में जगत् की स्थिति है जो नित्य है तथा जिसकी रचना का या प्रलय का प्रश्न ही नहीं है। मीमांसा दर्शन के अनुसार पृथ्वी आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शब्द प्रमाण नहीं है। इन सब को स्थिति अनादि ओर सतत है। पूर्वकल्प में भी मनुष्यों के शरीर पंचभौतिक ही थे तब उन को अलौकिक न मान कर (वर्तमान की भांति) मनुष्यधर्मा मानना ही उचित है। वेदों के वर्णन से भी ऐसा ही सिद्ध होता है कि पूर्व सृष्टि में मनुष्य के धर्म वर्तमान सृष्टि के ही समान थे भावार्थ यह है कि सृष्टि निरन्तर चलते रहने वाली है, न इस का प्रारम्भ (रचना या जन्म) होता है और न इसका कभी अन्त (प्रलय) ही होता है। यहां **“यः कल्पः सकल्पपूर्व”** का सिद्धान्त अटल है। अतः मीमांसाकों की यह निश्चित धारणा है कि सृष्टि किसी की रचना नहीं है और न वह किसी का परिणाम है। वह नित्य एवं सतत है।

मीमांसा में वैदिक कों में यज्ञ-अनुष्ठान पर अत्यधिक बल दिया गया है तथा यज्ञ-कर्म के सम्पादन का उद्देश्य स्वर्गप्राप्ति बताया है जो कि निरतिशय सुख कहा गया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार समस्त प्राणी आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति अर्थात् निरतिशय सुख (परमानन्द) की प्राप्ति की इच्छा सदैव रखते हैं। सकाम कर्मों को इस दर्शन मे पाप-पुण्य वाला बताया है जिससे जीवात्मा का इन कर्मों के तदनुसार फल विशेष की सिद्धि होने पर मृत्यु से छुटकारा (मोक्ष-प्राप्ति) नहीं होता है। सामान्य सांसारिक कर्मजन्य फल के समान उन कर्मों का फल भी परिच्छित्र (परिवर्तन-शील कभी शुभ कभी अशुभ) होता है। मीमांसकों ने कर्म का विभाजन तीन श्रेणियों में किया है। **1.सहज कर्म-** प्रकृति के द्वारा होने वाले कर्म जैसे कि पंच भूतों की उत्पत्ति, जैव सृष्टि आदि। **2.जैव कर्म-** मनुष्य योनि के कर्म जिन्हें मनुष्य अपनी इच्छानुसार पाप-पुण्य का निर्णय करने में स्वतंत्र है। **3.ऐक्ष कर्म-** वेदोक्त तथा अन्य शास्त्रों में प्रतिपादित कर्म जिनसे मनुष्य उन्नत अवस्था को प्राप्त कर लेता है और उसके सभी मल (दोष) दूर हो जाते हैं।

वेदान्त दर्शन में चेतन एवं अचेतन का सम्बन्ध-

वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म और जगत् (अचेतन) में विलक्षणत्व है। ब्रह्मशुद्ध और चैतन्य है और जगत् अशुद्ध एवं अचेतन है। जगत् अचेतन है क्योंकि वह चेतन पुरूष (जीवात्मा) का उपकरण है और अपने स्वरूप के अनुसार भोग्य कार्यों का कारण है। इस प्रकार का उपकारक और उपकार्य का सम्बन्ध दो चेतन तत्त्वों के मध्य नहीं हो सकता, किन्तु चेतन एवं अचेतन के मध्य यह सम्बन्ध हो सकता है।

डॉ० पाल डायसन ने वेदान्त दर्शन की अपनी टीका में कहा है, **“वेदान्त के अनुसार इस जगत् (अचेतन) की आन्तरिक परिणति है कि वह पूर्वजन्मों के कर्मों के फल का एक रंग मंच हो और प्रति जीव पूर्व जन्मों की श्रृंखला अनन्त तक पीछे जाती है। इन पूर्व कर्मों के अनुसार ही परमात्मा सुख और दुःख देता है- केवल इन में ही उस कारण की खोज होनी चाहिए जिस से वह प्रत्येक प्रलय के बाद जगत् की नई सृष्टि करता है- क्योंकि किये गये कर्मों का फल उस प्रलय में भी शेष रहता है और अपने विपाक के लिए हर बार नई सृष्टि चाहता है।”**

वेदान्त दर्शन के अनुसार चेतन कर्ता की प्रेरणा के बिना परमाणुओं में दोनों प्रकार से क्रिया होना संभव नहीं। अतः प्रकृति स्वयं जगत् रचना में प्रवृत्त नहीं हो सकती। वेदान्त दर्शन के अनुसार प्रकृति सूक्ष्म है, स्थूल नहीं है क्योंकि कार्य मात्र के उपादान के लिए ऐसा होना ही चाहिए। प्रलय काल में इस दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व के सूक्ष्म भाव ग्रहण करने की बात श्रुतियों में कही गई हैं। जैसे कि वृहदारण्यकोपनिषद् में प्रलय काल में **“नैवेह किंचिनाग्र आसीत्”** कहा है जिस का तात्पर्य यह है कि सृष्टि से पूर्व प्रलय काल में कुछ भी अभिव्यक्त पदार्थ नहीं था अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति सूक्ष्म रूप में अवस्थित थी।

वेदान्त दर्शन के अनुसार परमब्रह्म के संकल्प रूप प्रयत्न से प्रकृति में परिणाम होकर जगत् की उत्पत्ति होती है। अतः ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण तथा प्रकृति उपादान कारण है। अध्यात्म शास्त्रों में ब्रह्म को जगत् की योनि कहा है। मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म को इस जगत् रचना का निमित्त कहा है।

“नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद् भूतयोनि परिपश्यन्ति धीराः”

इस प्रकार दर्शनों के अनुसार यह सिद्ध है कि बह्म जीवात्माओं के कर्म भोग को प्रदान करने के लिए प्रकृति को सृष्टि रचना के लिए प्रेरित करता है। जीवात्मा की देह इन्द्रियांदि प्रकृति के अंग हैं जिन के द्वारा जीवात्मा संसार में कर्म करता है तथा उसके फल को भी भोगता है, इसी शरीर के द्वारा साधना करके जीवात्मा मोक्ष का भी अधिकारी बनता है। जीवात्मा और देह के संसर्ग को वेदान्त में उचित माना है। दर्शन के अनुसार आत्मा जब तक देह में रहता है तब तक तो उसके साथ सम्बन्ध रखता ही है, परन्तु देह से निकलने पर भी उसका सम्बन्ध देह से बना रहता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते समय भी वह सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखता है। परलोक में, स्वर्ग में और यहां तक कि प्रलय काल में भी देह से उसका सम्बन्ध माना गया है। इस प्रकार देह के साथ आत्मा का सम्बन्ध माने जाने में कोई दोष नहीं माना जाता, यह बात श्रुतिवाक्यों द्वारा भी प्रमाणित है। यहां तक कि आचार्य औडुलोमि की मान्यता के अनुसार- आत्मा मोक्ष में भी चेतन मात्र शरीर में अवस्थित रहता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में मुक्त आत्मा को **“अयमात्मा तेजोमयोऽमतृमयः”** कहा है। अर्थात् मुक्त आत्मा तेजोमय सुखस्वरूप (अमृतमय) है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अर्थसंग्रहः - लौगाक्षिभास्कर, सम्पादक-वाचस्पति उपाध्याय, चौखम्बा ओरियण्टालिया, दिल्ली, 1977।

2.अष्टाध्यायी - पाणिनी, सम्पादक- नारायण मिश्र, चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, 1977

3.गौतम - न्यायसूत्र, वात्स्यायन भाष्य, प्रकाशिका हिन्दी व्याख्या - दण्डिराज शास्त्री, द्वितीय संस्करण, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी-1, 1970

4.ऋग्वेदं - गीता प्रेस, गोरखपुर

5.कठोपनिषदम् - गीता प्रेस, गोरखपुर

6.अभ्यन्कर - वासुदेव शास्त्री, सर्वदर्शन संग्रह, द्वितीयाः आवृत्तिः, मंहारकर औरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1951

7.कृष्णयज्वन् - मीमांसा परिभाषा, व्याख्या - हरिदत्त शास्त्री साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ।

8.जैमिनि सूत्र - मीमांसा दर्शन, सम्पादक श्रीराम शर्मा, संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली।

9.न्यायसूत्रम् - गौतम सम्पादक- नारायण मिश्र, प्रकाशक- काशी संस्कृत ग्रन्थमाला 43, वाराणसी 1970

10.ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य - शंकराचार्य, सम्पादक- स्वामी श्री हनुमान दास षट्शास्त्री, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1967

11.भारतीय दर्शन (प्रथम खण्ड) - डॉ॰ राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6, संस्करण-2, 1969

12.न्यायदर्शनम् - वात्स्यायन भाष्य, गौतम कृत, सम्पादक- स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, प्रकाशक- बौद्ध भारती, वाराणसी-1

13.न्याय परिचयम् - फणिभूषण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1968